International Journal of Sanskrit Research 2017; 3(2): 111-114

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2017; 3(2): 111-114
© 2017 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 22-01-2017
Accepted: 23-02-2017

अनीश कुमार
संस्कृत विभाग, जम्मू वि॰ वि॰, जम्मू 180006

Correspondence
अनीश कुमार
संस्कृत विभाग, जम्मू वि॰ वि॰, जम्मू 180006

गृह्यसूत्रीय यज्ञों के माध्यम से पर्यावरण शुद्धि

अनीश कुमार

सारांश
प्रस्तुत शोधपत्र में गृह्यसूत्रीय यज्ञों के द्वारा पर्यावरण की शुद्धि के विषय में बताया गया है। यज्ञ में प्रयुक्त की जाने वाली सामग्री जब अग्नि के समावेश के द्वारा धूम्र रूप में वायुमण्डल में व्याप्त होती है तो वह समस्त भूमण्डल को स्वच्छ कर देती है।

कूट शब्दः गृह्यसूत्रीय, यज्ञ, सूत्रग्रन्थ, गृह्याग्नि, वेदार्थ, द्विज, स्मृतिग्रन्थ, पादस्थानीय, शस्यश्यामला, श्रौत्र, ऋचा

प्रस्तावना
यज्ञ भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग है। वैदिक साहित्य के अनुशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि गर्भाधन से लेकर मृत्यु पर्यन्त जो भी संस्कार वर्णित किये गये हैं उनमें किसी न किसी रूप में यज्ञ का विधान है। इन कमों का विधान जिन सूत्रग्रन्थों में उपलब्ध होता है वे गृह्यसूत्र कहलाते हैं। यह गृह्यसूत्र भारतीय पारिवारिक जीवन का अत्यन्त सुन्दर आंकड़ा प्रस्तुत करने वाले ग्रन्थ है। इनमें घरेलू जीवन से सम्बद्ध दैनिक, पाक्षिक तथा वार्षिक यज्ञों का विवेचन किया गया है। गृह्यसूत्रों में वर्णित यज्ञों का रूप सामान्यतः कुछ निश्चित् हुआ करता है। गृह्याग्नि से यज्ञाग्नि प्रज्जवलित की जाती है और उसमें देवताओं के लिए आहुतियाँ दी जाती हैं। [1] इन दैनिक यज्ञों के अतिरिक्त प्रत्येक मनुष्य का यह धार्मिक कर्त्तव्य होता हे कि इन्द्रादि देवताओं से सम्बन्धित यज्ञों को करने का उल्लेख इन साहित्यों मे प्रचुर रूप में मिलता हैं। यह सूत्र वेदार्थ की व्याख्या करने में बड़े सशक्त हैं, क्योंकि यज्ञादि के लिए इनमें नियमों का तो निर्देश है हि इसके अतिरिक्त ये मन्त्रों का उचित विनियोग बतलाते हैं। यज्ञों एवं संस्कारों में स्थान–स्थान पर वेदों के मन्त्रों के उचित प्रयोग होने से उस स्थान विशेष के द्वारा मन्त्रो का अर्थ स्पष्ट हो जाता है। वेदों की संगति बैठाना इनका मुख्य उद्धेश्य है। [2] एवम् मानव देह धारण करते ही द्विज, ऋषि ऋण, देव ऋण और पितृ ऋण तीन प्रकार के ऋणों से ऋणी बन जाता है। श्रीमद्भागवत [3] में आया है कि द्विजाति देवता ऋषि और पितर इन तीनों का ऋण लेकर ही उत्पन्न होता है इन ऋणों से मुक्त होने के लिए यज्ञ अध्ययन और सन्तानोत्पति करना आवश्यक है। [4] जैसा की तैत्तिरीय संहिता में भी आता है –जयामानो वै ब्राह्मणस्त्रिभिर्ऋणैऋर्णवान जायते ब्रह्मचर्येण ऋषिश्यो यज्ञेन देवेभ्यः प्रजया पितृभ्यः।। [5]
अर्थात् यज्ञ द्वारा इन तीनो ऋणों की मुक्ति होती है। इन यज्ञों के लिए वेदी बनायी जाती है। यज्ञ की वेदी को स्वच्छ करके उस पर कुशा आदि बिछाई जाती है तथा यह वेदी गोबर से लीपी हुई जगह पर बनाई जाती थी। [6] तथा उसमें यज्ञ किया सम्पन्न की जाती थी। यज्ञ की विशेषता वैदिक ऋषियों ने मानव जीवन से कई हजार वर्ष पूर्व ही बता दी थी। यज्ञ की महत्ता को मानव के कल्याणार्थ तथा यज्ञ से प्यावरण के सभी पहलुओं पर चौकन्नी दृष्टि थी वरना उसकी रक्षा और महत्व को भी स्पष्ट किया गया था। उनकी दृष्टि प्यावरण की और थी, वे भूमि को ईश्वर का रूप ही मानते थे। पर्यावरण की रक्षा पूजा का एक अविभाज्य अंग था, जैसा कि कहा भी गया है–

यस्य भूमिः प्रमाऽन्तरिक्षमुतोदरम्।
दिनं यश्चक्रे मूर्धानं तस्मै ज्येष्ठायब्रह्मणे नमः।।

अर्थात् भूमि जिसकी पादस्थानीय और अन्तरिक्ष उदर के समान है तथा द्युलोक जिसका मस्तक है, उन सबसे बड़े प्रकृति के अनुसार चलने का निर्देश किया गया है। वेदों के अनुसार प्रकृति एवं पुरुष का सम्बन्ध एक–दूसरे पर आधारित है। ऋग्वेद में प्रकृति का मनोहारी चित्रण हुआ है। वहाँ प्रकृति जीवन को ही सुख–शान्ति का आधार माना गया है। किस ऋतु में कैसा रहन–सहन हो, क्या खान–पान हो, क्या सावधानियाँ हों– इन सबका सम्यक् वर्णन है। ऋग्वेद [7] में वर्षा ऋतु को उत्सव मानकर शस्यश्यामला प्रकृति के साथ अपनी हार्दिक प्रसन्नता की अभिव्यक्ति की गई है–

ब्राह्मणासो अतिरात्रे न सोमे सरो न पूर्णमीमतो वदन्तः।
संवत्सरस्य तदहः परिष्ठ यन्मण्डूकाः प्रावृषीणं बभूव।।

अर्थात् जैसे जिस दिन पहली वर्षा होती है, उस दिन मेढ़क सरोवरों में पूर्णरूप से भर जाने की कामना से चारों और बोलते है। इधर–उधर स्थिर होते है, उसी प्रकार हे ब्राह्मणों! तुम भी रात्रि के अनन्तर ब्रह्म मुहूर्त में जिस समय (वेद ध्वनि से) सौम्य–वृद्धि होती है, उस समय वेद–ध्वनि से परमेश्वर के यज्ञ का वर्णन करते हुए वर्षा–ऋतु के आगमन को उत्सव की तरह मनाओ।

वेदों में पर्यावरण को अनेक वर्गों में बाँटा जा सकता है। जैसे (1.) वायु, (2.) जल, (3.) ध्वनि, (4.) खाद्य, (5.) मिट्टी, वनस्पति, पशु–पक्षी–संरक्षण आदि। सजीव जगत् के लिये पर्यावरण की रक्षा में वायु की स्वच्छता का प्रथम स्थान है। बिना प्राणवायु के क्षणभर भी जीवित रहना सम्भव नहीं है। ईश्वर ने प्राणि–जगत् के लिये सम्पूर्ण पृथ्वी के चारों ओर वायु का सागर फैला रखा है। हमारे शरीर के अन्दर रक्त वाहिनियों में बहता हुआ, रक्त बाहर की तरफ दबाब डालता रहता है, यदि इसे संतुलित नहीं किया जाय तो शरीर की धमनियाँ फट जायेगी तथा जीवन नष्ट हो जायेगा। वायु का सागर इससे हमारी रक्षा करता है। पेड़–पौधे आक्सीजन देकर क्लोरो फिल की उपस्थितियों, इसमें से कार्बन डाइ ऑक्साइड अपने लिए रख लेते है और आक्सीजन हमें देते है। इस प्रकार पेड़–पौधे वायु की शुद्धि द्वारा हमारी प्राण रक्षा करते है।

वायु की शुद्धि पर बल–

वायु की शुद्धि जीवन के लिये सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। इस तत्त्व को यजुर्वेद में इस प्रकार स्पष्ट किया गया है–

तनूनपादसूरो विश्ववेदा देवो देवेषु देवः।
पथो अनक्तु मध्वा घृतेन।।

अर्थात् उत्तम गुणवाले पदार्थों में उत्तम गुणवाला प्रकाश रहित तथा सबको प्राप्त होने वाला (तनूनपात्) जो वायु शरीर में नहीं गिरता, वह कामना करने योग्य, मधुर जल के साथ श्रौत आदि मार्ग को प्रकट करें उसको तुम जानो।

वायु को शुद्ध तथा अशुद्ध दो भागों में बाँटा गया है– (1) श्वास लेने के योग्य शुद्ध वायु तथा (2) जीवमात्र के लिए हानिकारक दूषित वायु–

द्वाविमौ वातौ वात आ सिन्धोरा परावतः।
दक्षं ते अन्य आ वातु परान्यो वातु यद्रपः।। [9]

अर्थात् प्रत्यक्ष भूत दोनों प्रकार की हवाएँ सागर पर्यन्त और समुद्र से दूर प्रदेश पर्यन्त बहती रहती है। हे साधक! एक तो तेरे लिये बल को प्राप्त करती है और एक जो दूषित है, उसे दूर फैंक देती है।

हज़ारों वर्ष पूर्व हमारे पूर्वजों को यह ज्ञान था कि हवा कई प्रकार के गैसों का मिश्रण है, जिससे अलग–अलग गुण एवं अवगुण है, इनमें ही प्राण वायु भी है, जो जीवन के लिये अत्यन्त आवश्यक है–

यददौ वात ते गृहेऽमृतस्य निधिर्हितः।
ततो नो देहि जीव से।। [10]

अर्थात् इस वायु के गृह में जो यह अमरत्व की धरोहर स्थापित है, वह हमारे जीवन के लिये आवश्यक है।

शुद्ध वायु कई रोगों के लिये औषधि का काम करती है, यह निम्न ऋचा में दिखाया गया है–

आ त्वागमं शन्तातिभिरथो अरिष्टतातिभिः।
दक्षं ते भद्रमाभार्षं परा यक्ष्मं सुवामि ते।। [11]

अर्थात् यह जानो कि शुद्ध वायु तपोदिक– जैसे घातक रोगों के लिये औषधि रूप है। हे रोगी मनुष्य! मैं वैद्य तेरे पास सुखकर और अहिंसाकर रक्षण में आया हूँ। तेरे लिये कल्याण कारक बल को शुद्ध वायु के द्वारा लाता हूँ और तेरे जीर्ण रोगों को दूर करता हूँ। हृदयरोग, तपेदिक तथा निमोनिया आदि रोगों में वायु को बाहरी साधनों द्वारा लेना जरूरी है। यहाँ यह संकेत है–

वात आ वातु भेषजं शंभु मयोभु नो हृदे।
प्रण आयूँषि तारिषत्।। [12]

अर्थात् याद रखिये शुद्ध ताजी वायु अमूल्य औषधि है, जो हमारे हृदय के लिये दवा के समान उपयोगी है, आनन्ददायक है। वह उसे प्राप्त करता है और हमारी आयु को बढ़ाता है। गृह्यसूत्रीय यज्ञों को प्रतिदिन करने से हम वायु को शुद्ध कर सकते है। गृह्ययज्ञों में प्रयुक्त की जाने वाली सामग्री अग्नि में भस्म होकर वायु के द्वारा समस्त वायुमण्डल में फैल जाती है जो विषेले तत्वों को ध्वस्त करके शुद्ध तत्वों को स्थापित करती है जिससे प्रकृति में सुगन्ध शक्ति भर जाती है तथा पर्यावरण में शुद्ध वायु का संचरण होता है।

जल–प्रदूषण और उसका निदान

गृह्यसूत्रों में जल की उपयोगिता का वर्णन आया है स्मृति ग्रन्थों में भी जल का अतीव महत्व है। जल मानव–जीवन में पेय के रूप में, सफाई एवं धोने में, वस्तुओं को ठंडा रखने तथा गरमी से राहत पाने में, विद्युत–उत्पादन में, नदियों–झीलों और समुद्र में, सवारियों और समानों को एक स्थान से दूसरे स्थानों पर पहुँचाने के लिये भाप–इंजनों को चलाने में, अग्नि बुझाने में, कृषि–सिंचाई तथा उद्योगों और भोजन बनाने में अति आवश्यक है। सभी जीवधारी जल का उपयोग निरन्तर करते रहते हैं, जल के बिना जीवन सम्भव नहीं है। औद्योगिकरण के परिणाम स्वरूप कल–कारखानों की संख्या में पर्याप्त वृद्धि कारखानों से उत्पन्न अपशिष्ट पदार्थ– कूड़ा करकट, रासायनिक अपशिष्ट आदि नदियों में मिलते रहते है। अधिकांश कल कारखाने नदियों, झीलों तथा तालाबों के निकट होते है, जनसंख्या–वृद्धि के कारण मल–मूत्र, नदियों में बहा दिया जाता है। गाँवों तथा नगरों का गंदा पानी प्रायः एक बड़े नाले के रूप में नदियों में तालाबों और कुओं में अन्दर ही अन्दर आ मिलता है। समुद्र में परमाणु विस्फोट से भी जल प्रदूषित हो जाता है। गृह्यसूत्रों में जल प्रदूषण की समस्या पर विस्तार से प्रकाश पड़ा है। मकान के पास ही शुद्ध जल से भरा हुआ जलाशय होना चाहिये–

इमा आपः प्र भराम्ययक्ष्मा यक्ष्मनाशनीः।
गृहानुप प्र सीदाम्यमृतेन सहाग्निना।। [13]

अर्थात् अच्छे प्रकार से रोगरहित तथा रोगनाश इस जल को मैं लाता हूँ। शुद्ध जलपान करने से मैं मृत्यु से बचा रहूँगा। अन्न, घृत, दुग्ध आदि सामग्री तथा अग्नि के सहित घरों में आकर अच्छी तरह बैठता हूँ। शुद्ध जल मनुष्य को दीर्घ आयु प्रदान करने वाला, प्राणों का रक्षक तथा कल्याणकारी है– यह भाव निम्न ऋचा में देखिये–

शं नो देविरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शंयोरभिस्रवन्तुः
नः।। [14]

अर्थात् सुखमय जल हमारे अभीष्ट की प्राप्ति के लिये तथा रक्षा के लिये कल्याणकारी हो। जल हम पर सुख समृद्धि की वर्षा करें।

जल चेहरे का सौन्दर्य तथा कोमलता और कान्ति बढ़ानें में औषधिरूप है। भोजन के पाचन में अधिक जल पीना आवश्यक है, यह विचार निम्न ऋचा में देखिये–

आपो भद्रा घृतमिदाप आसत्रग्रीषोमौ बिभ्रत्याप इताः।
तीव्रो रसो मधुपृचामरंगम आ मा प्राणेन सह वर्चसा
गमेत्।। [15]

अर्थात् याद रखिये, जल मंगलमय और घी के समान पुष्टिदाता है तथा वही मधुरता भी जलधाराओं का स्रोत भी है। भोजन को पचाने में उपयोगी तीव्र रस है। प्राण और कान्ति, बल और पौरुष देने वाला, अमरता की ओर ले जाने वाला मूल तत्त्व है। आशय यह है कि जल के उचित उपयोग से प्राणियों का बल, तेज, दृष्टि और श्रवण–शक्तियाँ बढ़ती है। एक ऋचा में कहा गया है कि जल से ही देखने–सुनने एवं बोलने की शक्ति प्राप्त होती है। भूख, दुःख, चिन्ता, मृत्यु के त्याग पूर्वक अमृत आनन्द प्राप्त होता है–

आदित्यश्याम्युत वा वृणोम्या मा घोषो गच्छति वाङ्
मासाम्।
मन्ये भेजा नों अमृतस्य तर्हि हिरण्यवर्णा अतृपं यदा वः।।[16]

तात्पर्य यह है कि देखने–सुनने एवं बोलने की शक्ति बिना पर्याप्त जल के उपयोग के नहीं आती। जल ही जीवन का आधार है। अधिकांश जीव जल में ही जन्म लेते हैं और उसी में रहते है। हे जलधारको मेरे निकट आओ। तुम अमृत हो।
कृषि–कर्म का महत्त्व निम्न ऋचा में देखिये, किसानों के नेत्र जल के लिये वर्षा–ऋतु में बादलों पर ही लगे रहते है–

तस्मा अरंगमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ।
आपो जन यथा चनः।। [17]

हे जल! तुम अन्न की प्राप्ति के लिये उपयोगी हो। तुम पर जीवन तथा नाना प्रकार की औषधियाँ, वनस्पतियाँ एवं अन्न आदि पदार्थ निर्भर है। तुम औषधिरूप हो। गृह्यसूत्रों में वर्णित यज्ञों स`जल की शुद्धि बतलाते हुए पंचमहायज्ञों में देव यज्ञ में प्रयुक्त सामग्री एवं नित्य होम में सम्मिलित ओषधियों का जब अग्नि में समावेश होता है उस यज्ञरूपी राख से जल की शुद्धि होती है। [18]

ध्वनि–प्रदूषण एवं उसका निदान

भजन–कीतर्न, धार्मिक गीत–गान, धर्म ग्रन्थों का पाठ, प्रार्थना, स्तुति, गुरुग्रन्थसाहिब का अखण्ड पाठ, रामायण, मीरा तथा नानक एवं कबीर के भक्ति–प्रधान भजन उपयोगी है। संगीत भक्ति–पूजा का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। खेद है कि आजकल ध्वनि के साधन का दुरूपयोग हो रहा है। रेडियो, ट्रांजिस्टर, टी० बी०, ध्वनि–प्रसारक यन्त्र जोर–जोर से सारे दिन कान फाड़ते रहते है। इससे सिर दर्द, तनाव, अनिद्रा आदि फैल रहे है। वेदों में कहा गया है कि हम स्वास्थ्य की दृष्टि से अधिक तीखी ध्वनि से बचे, आपस में बात करते समय धीमा एवं मधुर बोलें–

म भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुता स्वसा
सम्य४चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया।। [19]

अर्थात् भाई–भाई से, बहन–बहन से अथवा परिवार में कोई भी एक दूसरे से द्वेष न करें। सब सदस्य एक मत और एकव्रती होकर आपस में शान्ति से भद्र पुरुषों के समान मधुरता से बातचीत करें–

जिह्वाया अग्रे मधु मे जिह्वामूले मधूलकम्।
ममेदह क्रतावसो मम चित्तमुपायसि।। [20]

अर्थात् मेरी जीभ से मधुर शब्द निकले। भगवान का भजन–पूजन–कीर्तन करते समय मूल से मधुरता हो। मधुरता मेरे कर्म में निश्चय से रहें। मेरे चित्त में मधुरता बनी रहें।

खाद्य–प्रदूषण से बचाव

गृह्यसूत्रों में खाद्य के सम्बन्ध में वैज्ञानिक आधार पर निष्कर्ष दिया है। जैसे मनुष्य पाचन शक्ति से भोजन को भली–भाँति खुद पचाये जिससे वह शारीरिक और आत्मिक बल बढ़ाकर उसे सुखदायक बना सकें। इसी प्रकार पेय पदार्थों जैसे जल–दूध इत्यादिक विषय में भी उल्लेख है–

यत् पिबामि सं पिबामि समुद्र इव संपिब।
प्राणानमुष्य संपाय सं पिबामो अमुं वयम्।। [21]

अर्थात् मैं जो कुछ पीता हूँ यथा विधि पीता हूँ। जैसे यथा विधि पीने वाला समुद्र पचा लेता है। दूध–जल जैसे पेय पदार्थों को हम उचित रीति से ही पिया करें। जो कुछ खाये, अच्छी तरह चबाकर खायें–

यद् गिरामि सं गिरामि समुद्र इव संगिरः।
प्राणानमुष्य संगीर्य सं गिरामो अमुं वयम्।। [22]

अर्थात् जो भी खाद्य पदार्थ हम खायें, वह यथाविधि खायें, जल्दबाजी न करें। खूब चबा चबाकर शान्तिपूर्वक खायें। जैसे यथा विधि खाने वाला समुद्र सब कुछ पचा लेता है। हम शाक–फल–अन्न आदि रसवर्धक खाद्य पदार्थ ही खायें।

मिट्टी (के पृथ्वी) एवं वनस्पतियों में प्रदूषण की रोकथाम–

अथर्ववेद के 12वें काण्ड के प्रथम सूक्त में पृथ्वी का महत्त्व प्रदर्शित किया गया है सभी प्राणी पृथ्वी के पुत्र कहे गये है–

माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः।

पृथ्वी का निर्माण कैसे हुआ है, देखिये–

शिला भूमिरश्मा पांसुः साः भूमिः संधृता धृता।
तस्यै हिरण्यवक्षसे पृथिव्या अकरं नमः।। [23]

अर्थात् भूमि चट्टान, पत्थर और मिट्टी है। मैं उसी हिरण्यमयी पृथ्वी के स्वागत वचन बोलता हूँ। नाना प्रकार के फल, औषधियाँ, फसलें, अनाज, पेड़–पौधे इसी मिट्टी पर उत्पन्न होते हैं। उन पर ही हमारा भोजन निर्भर है। अतः पृथ्वी को हम माता के समान आदर दें।

यस्यामत्रं व्रीहियवौ यस्या इमाः प४च कृष्टयः।
भूम्यै पर्जन्यपत्न्यै नमोऽस्तु वर्ष मे दसे।। [24]

याद रखिये क्योंकि हमें भोजन और स्वास्थ्य देने वाली सभी वनस्पतियाँ इस भूमि पर ही उत्पन्न होती है। पृथ्वी सभी वनस्पतियों की माता और पिता मेघ है। क्योंकि वर्षा के रूप में पानी बहाकर यह पृथ्वी में गर्भाधान करता है। पृथ्वी में नाना प्रकार की धातुएँ ही नहीं, वरन् जल और खाद्यान्न, कन्द–मूल भी पर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं, चतुर मनुष्यों को इससे लाभ उठाना चाहिये–

यामन्वैच्छद्धविषा विश्वकर्मान्तरर्णवे रजसि प्रवष्टिाम्।
भुजिष्यं पात्रं निहितं गुहा यदाविर्भोगे अभवन्मातृमद्भवः।।

प्रस्तुत ऋचा का यह भावार्थ है कि चतुर मनुष्य पृथ्वी तल के नीचे से कन्दमूल खाद्यान्न खोजकर जीवन–विकास करते है।
प्रस्तुत ऋचा में यह स्पष्ट किया गया है कि आज हम अपनी मिट्टी से न्याय नहीं कर रहे है। अंधाधुंध शहरीकरण, औद्योगिकी करण के कारण वन तेजी से काटे जा रहे है। मिट्टी ढीली पड़ती जा रही है। खेत अनुपजाऊ हो गये हैं। पेड़ों के अभाव में वर्षा–ऋतु भी

अनियन्त्रित हो गयी है। बढ़ती हुई जनसंख्या की खाद्य सामग्री की समस्या मिट्टी एवं वनस्पतियों के प्रदूषण से फैली है।

निष्कर्ष

अतः हम यह कह सकते है कि गृह्यसूत्रों के अनुशीलन के पश्चात् यह ज्ञात होता है कि आधुनिक काल में जो आधुनिक अवयवों एवं यंत्रों का जो हम प्रयोग करते हैं उनसे पर्यावरण की अशुद्धि होती है। अतः इन अवयवों के उपयोग से हमारे आस–पास के पर्यावरण की अधिक मात्रा में क्षति होती है जिससे मानवीय जीवन ही नहीं बल्कि समस्त भूमंडल की हानि होती है। गृह्यसूत्रों में वर्णित यज्ञों के माध्यम से हम अपने पर्यावरण को स्वच्छ रख सकते है।

पाद टिप्पणी

1. आ. गृ. सू. पृ. 12
2. कौ. गृ. सू. पृ. 1
3. श्री. मद्. भा.पु. 10/84/39
4. गृ. अनु. अ. पृ. 423
5. तै. सं. 3/10/5
6. पा. गृ. सू. 29/हरि. भा. पृ. 1
7. शं. गृ. सू. 11/5/6,7– पा. गृ. सू. 2/9/1– आ. गृ. सू. 3/1/14
8. ऋग्वेद 7/103/7
9. य. वे. 27/12
10. ऋ. वे. 10/137/2
11. वहीं 10/186/3
12. वहीं 10/137/4
13. वहीं 10/186/1
14. अ. वे. 3/12/9
15. ऋ. वे. 10/9/4
16. अ. वे. 3/13/5
17. वहीं 3/13/6
18. ऋ. वे. 10/9/3
19. अ. वे. 3/30/3
20. वहीं 3/34/2
21. वहीं 1/34/2
22. वहीं 6/135/2
23. वहीं 6/135/3
24. वहीं12/1/26
25. वहीं 12/1/42